पाठ–8
तैरने वाला समाज ही डूब रहा है

मूल पाठ :–

उत्तर बिहार में आने वाली बाढ़ केवल यहीं नहीं आती; इसकी शुरूआत नेपाल से होती है, फिर वह उत्तर बिहार आती है, इसके बाद बंगाल और सबसे अंत में बांग्लादेश होते हुए बंगाल की खाड़ी में मिलती है। बाढ़ के आते ही हमें लगता है कि यह कौन सी विपदा आ गई है, अब क्या किया जाए, जैसे हम इसके बारे में कुछ न जानते हों, जबकि यह हर साल आती है, और इसके आने का समय भी लगभग एक ही रहता है। इसके आने से पहले जो तैयारियाँ करनी चाहिए, वह हम नहीं करते। लेखक के अनुसार पहले हमारा समाज ऐसा व्यवहार नहीं करता था। पहले बाढ़ के नाम पर इतनी बड़ी सरकारी सहायता नहीं मिलती थी, बाढ़–राहत के कामों में लगाने के लिए इतना बड़ा प्रशासन भी नहीं रहता था। इस सबके बावजूद, लोग इतने परेशान नहीं होते थे। वे अपनी व्यवस्था अच्छी तरह करना जानते थे। आखिर कैसे?

नेपाल ने पानी छोड़ दिया, इसलिए उत्तर बिहार बह गया। वे कहते हैं कि नेपाल में पानी रोकने की व्यावहारिक जरूरत भी नहीं है। हम जानते हैं कि नेपाल ऊँचाई पर है, पानी का प्रवाह हमेशा ऊपर से नीचे की ओर होता है, यदि नेपाल में पानी रोक भी दिया जाए, तो इससे बाढ़ का खतरा समाप्त नहीं हो जाएगा। नेपाल हिमालय की गोद में बसा हुआ एक छोटा देश है, हम जब यह अपेक्षा करते हैं कि वह पानी को रोक ले, तो क्या कभी यह सोचते हैं कि बाढ़ से वह खुद भी त्रस्त होता है। बाढ़ से जानें वहाँ भी जाती है। नेपाल में पानी रोकना उचित नहीं है, लेखक ने इस संबंध में बहुत ही उचित कारण बताया है। हिमालय का यह हिस्सा बहुत ही कच्चा है, हम चाहे जितना भी ईमानदारी और सावधानी से बाँध बनाएँ, वह प्रकृति की छोटी सी हलचल से टूट सकता है। वैज्ञानिक इस बात की बार–बार चेतावनी देते रहते हैं कि यह क्षेत्र भूकंप की दृष्टि से बहुत खतरनाक है। ऐसे में पानी को रोकने के लिए बनाए जानेवाले बाँध कभी भी टूट सकते हैं।

हिमालय से अनेक नदियाँ नेपाल होते हुए सीधे उत्तर बिहार आती हैं, अतः उनका वेग भी अधिक होता है। कई नदियाँ हिमालय की चोटियों से उतरती हुई उत्तर बिहार आती हैं, वे ऊँचाई से आती हैं, इसलिए तेज भी होती हैं। गंगा नेपाल होकर बिहार नहीं आती है। वह गंगोत्री से निकलती है, और उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश होते हुए बिहार आती है, बिहार आने से पहले वह हजारों किलोमीटर की दूरी तय करती है, जबकि नेपाल से आने वाली नदियों को कम दूरी तय करनी होती है, अतः इनका वेग भी अधिक होता है। इतना ही नहीं, ये नदियाँ अपने साथ गाद–मिट्टी भी बहुत लाती हैं। पहले नदियाँ अपने साथ इस गाद को बहाकर लेती जाती थीं, और अपने प्रवाह के साथ फैलाती जाती थी। अब हमने नदियों के रास्ते में बाँध बना दिए हैं, इससे यह गाद बह नहीं पाता, और नदियाँ उथली हो जाती है। उथली यानी उनकी गहराई घटती जाती है। इस बात को हम ऐसे समझें, नदियाँ किसी भी इलाके का सबसे गहरा हिस्सा होती हैं। आपने किसी नदी को गर्मी के दिनों में देखा होगा, तो महसूस किया होगा, यह सामान्य तल से नीचे है, इसी कारण से पानी उनसे होकर बहता है। बाँध बनने के कारण गाद नदी की पेटी में जमा होते जाता है और धीरे–धीरे उसकी गहराई समाप्त हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि जब नदियों में पानी अधिक होता है, तो गहराई न होने के कारण वह आस–पास के क्षेत्रों में फैल जाता है और ऊँचा से ऊँचा बाँध भी उसे नहीं रोक पाता है।

इसकी तीन तहें हैं– आंतरिक, मध्य और बाह्य। बाह्य हिस्सा शिवालिक है। यह सबसे नया है और कच्चा है। हिमालय में होने वाली प्रकृति की हर हलचल को हमारे सामने प्रत्यक्ष कर देती है–''वैसे भी हिमालय के लिए कहा जाता है कि यह अरावली, विंध्य और सतपुड़ा के मुकाबले बच्चा है। वह अभी उछलता–कूदता है, खेलता–डोलता है। टूट–फूट उसमें बहुत हाती रहती है। इसलिए हिमालय की ये नदियाँ सिर्फ पानी नहीं बहाती हैं; वे गाद, मिट्टी, पत्थर और बड़ी–बड़ी चट्टानें भी साथ लाती हैं।''

उत्तर बिहार के लोग नदियों के साथ रहना जानते थे। वे सदियों से नदियों के साथ रहते आ रहे थे। प्राकृति माँ है! नदी माँ है! और, एक बच्चे के लिए माँ की गोद में से अधिक सुरक्षित जगह दूसरी क्या हो सकती है! बच्चे के लिए सबसे अधिक भरोसा की जगह माँ की गोद ही होती है! माँ की गोद में वह

निर्भय हो जाता है। माँ की गोद में आकर बच्चा माँ से संघर्ष नहीं करता, उसके पास रहकर वह किसी तरह का घमंड नहीं नहीं करता। सदियों से उत्तर बिहार के लोग नदियों के साथ इसी भाव से रहते आ रहे थे। वे प्रकृति के साथ संघर्ष में नहीं, साहचर्य में विश्वास करते थे। वे जानते थे कि नदियों से उनका जीवन है, इसलिए वे नदियों को कष्ट नहीं पहुँचाते थे। उनमें अहंकार नहीं था। वे निदयों के मार्ग में बाधाएँ खड़ी नहीं करते थे। उन्होंने नदियों के साथ जीने की कला सीख ली थी। उन्होंने अपनी सभी चीजें इसी के अनुरूप विकसित की थीं। वे अपने नुकसान के लिए नदियों को दोष नहीं देते थे। उनकी फसलें बाढ़ से भी खराब नहीं होती थीं। उत्तर बिहार में धान की ऐसी किस्में बोई जाती थीं, जो बाढ़ आने पर पानी बढ़ने के साथ–साथ बढ़ती जाती थीं, जैसे–जैसे पानी बढ़ता था, फसल की ऊँचाई भी बढ़ती जाती थी, अब इस तरह की किस्में नहीं लगाई जाती हैं, क्योंकि इनसे उपज कम होती थी, अब अधिक उपज देनेवाली किस्में लगाई जाती हैं, पर ऐसी किस्में बाढ़ आने पर बर्बाद हो जाती हैं।

नदियों ने दुख के अलावा कुछ नहीं दिया है, नदियों के नाम देख ले तो किसी भी नाम में दुख का कोई संकेत नहीं मिलता। अगर उन्होंने दुख दिया होता तो समाज ने इनका नाम भी ऐसा रखा होता। नदियों के नाम उनके गुणों का परिचय देते हैं। उत्तर बिहार में अनेक नदियों के नाम गोल आभूषणों पर हैं। इनसे पता चलता है कि ये गोल बहती थी। उत्तर बिहार में अनेक गाँवों को पार करने से पहले किसी न किसी नदी को पार अवश्य करना पड़ता था। अपरबेल, दस्युहरण, खिरोदी, जीवछ, सोनबरसा, मरगंगा, मरने , गोमूत्रिका, धर्ममूला; ये सब नदियों के नाम है; और इन नामों से नदियों के गुण को जाना जा सकता है। एक नदी कहाँ से निकलती है और किस नदी से मिलती है, जब यह पता नहीं चला तो समाज ने उसका नाम 'अमरबेल' रख दिया। एक नदी जिसका प्रवाह वैसा ही है जैसा कोई गाय चलते–चलते पेशाब करती है तो जमीन पर आड़े तिरछे निशान पड़ जाते हैं, तो उसका नाम 'गोमूत्रिका' रख दिया। यानी, समाज ने नदियों के स्वभाव को देखकर उनाक नाम रखा। पर, कोई भी नाम ऐसा नहीं मिलता जिसमें ऐसा भी संकेत हो कि नदियों ने दुख दिया हो। नदियों को यहाँ हमेशा आदर दिया गया है इसलिए कि ये अपने साथ हिमालय से उपजाऊ मिट्टी लाती हैं, और इनसे खेती में लाभ होता है।

नदियाँ विहार करती हैं, उत्तर बिहार में। वे खेलती कूदती हैं। यह सारी जगह उनकी है। इसलिए वे कहीं भी जाएँ उसे जगह बदलना नहीं माना जाता था। विहार माने घूमना। उत्तर बिहार में नदियाँ घूमती हैं, बिना रोक–टोक। स्वतंत्र! वे कीं भी जाएँ, समाज उनके प्रवाह में कभी हस्तक्षेप नहीं करता था। वह उन्हें अविरल बहने देता था। कोसी ने पिछले सालों में लगभग 148 किलोमीटर के क्षेत्र में अपनी धारा बदलती है, क्या ऐसी नदी को किसी तटबंध या बाँध से बाँधा जा सकता है। बिल्कुल नहीं।

नदियों में आने वाली बाढ़ को रोकने के लिए यहाँ पहले कुछ दूसरे उपाय किए जाते थे। बाढ़ के पानी को यहाँ बड़े–बड़े तालाबों में डाला जाता था, इससे पानी का वेग कम जाता था। हिमालय की तराई में 'चार कोस झाड़ी' भी बाढ़ रोकने में मदद करते थे। यह वन प्रदेश चार कोस की चौड़ाई और ग्यारह–बारह सौ किलोमीटर की लंबाई में था, इससे बाढ़ को प्राकृतिक रूप से रोकने में मदद मिलती थी। ये बाढ़ के पानी का वेग कम कर देते थे और इनसे बाढ़ का प्रभाव भी कम जाता था। 'चार कोसी झाड़ी' का अब कुछ ही हिस्सा बचा है। अपने प्राकृतिक बाँधों को हम भूल गए हैं।

ग्वाले का घर नदी के किनारे था , आकाश में काली घटाएँ छाई थीं। बाढ़ के किसी भी समय आने की संभावना थी। ग्वाला बुद्ध से कहता है कि उसने अपना छप्पर कस लिया है, गाय को मजबूती से खूँटे से बाँध दिया है, फसल काट ली है, उसे बाढ़ का काई डर नहीं है, नदी देवी आएगी और चली जाएगी। इसके बाद बुद्ध ग्वाले से कहते है, मैंने तृष्णा की नावों को खोल दिया है, अब मुझे बाढ़ का कोई डर नहीं है। दोनों निर्भय हैं। ग्वाले और बुद्ध के बीच का ढाई हजार साल पुराना यह संवाद आज हमें कई संदेश देता है। पहला संदेश हम ग्वाले के कथन से प्राप्त करते हैं। नदी किनारे का यह कैसा ग्वाला है जो यह जानता है कि बाढ़ कभी भी आ सकती है, पर वह घबराया हुआ नहीं है, बस इतने से वह निश्चित है कि उसने छप्पर कस लिया है, गाय बाँध ली है, नदी देवी आएगी और चली जाएगी। यानी, वह नदी के स्वभाव को जानता था। वह नदी के साथ रहना जानता था, वह जानता था कि नदी नुकसान नहीं पहुँचाएगी। क्या ढाई हजार साल बाद आज भी कोई इतना निश्चित रह सकता है। अगर नहीं, तो क्यों! यह कथा हमें सोचने के लिए विवश करती है कि हमने नदी पर विश्वास करना क्यों छोड़ दिया! नदी से पहले किसी को भय नहीं था, तो

अब भय क्यों होता है? और, जब हम इस सवाल पर सोचना शुरू करेंगे, तो यही पाएँगे कि दोष नदियों का नहीं, हमारा है। हमने अपने स्वार्थ के लिए नदियों के मार्ग में बाधाएँ खड़ी की तो बाढ़ का रूप भयानक हो गया।

मैंने तृष्णा की नावों को खोल दिया है, अब मुझे बाढ़ का कोई भय नहीं है। तृष्णा यानी इच्छा। बुद्ध कहते हैं कि उन्होंने इच्छाओं की नाव खोल दी है, वे उस नाव की सवारी नहीं करेंगे। हमारी इच्छाएँ हमारे भीतर लालच पैदा करती हैं, और लालच से कष्ट उत्पन्न होता है। बुद्ध ने यही संदेश दिया था, कि दुनिया में दुख का कारण इच्छा है। हमारी इच्छाएँ हमें भटकाती हैं, हमें कष्ट देती हैं। अगर किसी के पास सौ रूपए हैं तो वह सौ रूपए और पाने के लिए बेचैन रहता है, चिंतित रहता है। भटकता रहता है। बुद्ध ने यही संदेश समूची मानवता को दिया कि ऐसी इच्छा न रखो, लोभ न करो। हम बाजार से निकलते हैं तो तरह–तरह की चीजें दिखाई पड़ती है, अच्छे कपड़े, अच्छे मिठाईयाँ आदि। पड़ोस में कोई धनी है तो हमारे भीतर भी इच्छा जागती है कि हमारे पास भी इतना धन हो, और फिर ऐसी इच्छाओं के साथ बेचैन रहते हैं। एक तरह से कहें कि हमारे आस–पास ऐसी चीजों की बाढ़ है, और हम यदि इच्छाओं के नाव पर सवार रहेगें तो हमेशा भटकते रहेगें, इस बाढ़ कहाँ खो जाएगें, पता भी नहीं चलेगा। बुद्ध निश्चित थे, क्योंकि उन्होंने रूपी नाव को ही खोल दिया था।

विद्यापति गंगा के अनन्य भक्त थे, वे गंगा के पास अपने जीवन का अंतिम समय बिताना चाहते थे, वे उस चल पड़े पर जब तट तक नहीं पहुँच सके, तो गंगा से खुद को ले जाने की प्रार्थना की, गंगा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। और कवि के पास आ गई। दूसरी कथा, फूलपरास की है। कहतें है कि कभी भूतही नदी फूलपरास से रास्ता बदलकर कहीं और से भटकने लगी तो लोगों ने उसे बुलाने के लिए अनुष्ठान किया तो नदी के मनुहार स्वीकार कर अपना रास्ता फिर से बदल लिया।

नदी ने प्रार्थना स्वीकार की होगी, जैसी बातें अवैज्ञानिक है, समाज में ऐसी कहानियाँ गाढ़ ली है, आदि। पर, हमें यह सोंचना चाहिए कि समाज ने ऐसी कहानियाँ क्यों गढ़ी, और ऐसी कहानियों से क्या हासिल होता है? समाज में ऐसी कहानियाँ इसलिए जन्म ले पाई क्योंकि हमारे समाज का नदियों से बहुत

गहरा रिश्ता था, नदियों को वह आदर देता था, नदियों से हमें अनेक लाभ थे। और, ऐसी कहानियों को आज दोहराने की आवश्यकता इसलिए है कि हम समझ सकें कि आज नदियों के साथ हमारा रिश्ता कैसा है? आज हम कहते हैं कि नदियों ने कष्ट के सिवा कुछ नहीं दिया है प्रार्थना यह किसी अनुष्ठान से अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन दोनों कथाओं में हम पाएँगे कि नदियाँ पहले भी मार्ग बदलती थी और उनके मार्ग बदलने को समाज सहजता से स्वीकारता था। वह आज की तरह हाय–तौबा नहीं मचाता था।

बाढ़ के पानी के वेग को कम करने के लिए यहाँ बड़े–बड़े तालाब बनाकर रखे जाते थे। परिहारपुर, भरवाहा और आलापुर आदि स्थानों में दो–तीन मील लंबे–चौड़े तालाब थे। बाद में राजनेताओं और अधिकारियों को लगा कि ये बड़े–बड़े तालाब की जगह बेकार की जगह छेकते हैं, तब इनका पानी सुखाकर इन्हें खेत का रूप दिया जाने लगा, लेकिन इससे नुकसान ही हुआ। इस तरह हमने दो–चार खेत जरूर बढ़ा लिए, लेकिन दुसरे ओर शायद सौ–दो सौ खेत हमने बाढ़ को भेंट चढ़ा दिए। अब यहाँ पुराने खेत तो डूबते ही हैं, नए भी डूबते है। खेत ही अकेले नहीं खलियान, घर, बस्ती सब बाढ़ में समा जाते हैं।

बड़े–बड़े तालाबों में नदियों के पानी को जमा करके पानी के वेग को कम करने का उपाए यहाँ के लोग लंबे समय से करते आ रहे हैं। समुचे देश में 'रेन वाटर हारवेस्टिंग' यानी वर्षा के पानी का संचायन किया जाता है, तो यहाँ बाढ़ के पानी का। क्योंकि हिमालय से आने वाली नदियाँ अपने साथ बहुत पानी लाती थी। यकीनन, हमारा समाज बहुत समझदार था। ऐसे समझदार समाज को आज लोग अनपढ़ और पिछड़ा कहते है। यह उचित नहीं है। ऐसा कहने में लोगों का अहंकार ही प्रकट होता है। पहले लोग नदियों के मार्ग में बाधाएँ खड़ी नहीं करते थे। बस्ती कहाँ बसेगी, कहाँ नहीं बसेगी, इसका पूरा ख्याल रखा जाता था। चौरों में घर नहीं बनाए जाते थे। पर, आज इस तरह के नियम टूट रहे हैं तो प्राकृति भी अपने नियम तोड़ने लगी है पिछले लगभग सौ–दो सौ सालों में नदियों को बाँधों से बाँधन के भी खूब प्रयास हुए है। इस बात का ख्याल रखे बगैर कि हिमालय से आने वाली इन नदियों को बाँध सकना आसान नहीं है। फलतः बाढ़ की भयावहता बहुत बह गई है।

बाढ़ राहत में पैसे की होनेवाली बर्बादी का। राहत का काम हेलीकॉप्टरों से किया जाता है। जितना का खाना बाँटा जाता है उससे ज्यादा बाँटने में खर्च हो जाता है। यदि इस काम में महल्लों और नाविकों को लगाया जाए तो खर्च भी कम पड़ेगा और पैसा उन तक पहुँचेगा, जिन्हें इनकी सबसे ज्यादा जरूरत होती है। इन्हें इस काम में सम्मान के साथ लगाया जाए। बाढ़ के दिनों में इनका काम केवल जीविका के लिए नहीं होता है, बल्कि यह पूरी मानवता की सेवा के लिए भी होता है। लेकिन दुखद पहलू यह भी है कि कई बार उन्हें समय पर मेहनाताना नहीं दिया जाता।

यह बाढ़ अकेले हमारी समस्या नहीं है, और न ही इससे हम अकेले निपट सकते है। नेपाल, बंगाल, बंग्लादेश; सबको इस समस्या पर मिलकर विचारना चाहिए। जैसे हिमालय की तराई में वन–बाँध के द्वारा बाढ़ के प्रभाव को रोका जाता है, बिहार में बड़े–बड़े तालाबों से बाढ़ के वेग को कम किया जाता था, उसी तरह प्रत्येक समाज के पास इससे जुड़े अनुभव होंगे। हमें इन अनुभवों को साझा करना चाहिए, और यहाँ विचार करना चाहिए कि ऐसी उपायों को उसी रूप में अपनाकर या उनमें कुछ परिवर्तन करके हम किस प्रकार इस समस्या से निपट पाएँगे।

अनुपम मिश्र